International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 36-37

साहित्यिक गीत और लोकगीतों में अंतर

डॉ0 वैशाली गोलाप

भाषा तकनीशियन, कुशाभाऊ ठाकरे, पत्रकारिता एवं जनसंचार वि.वि., रायपुर (छ.ग.), भारत।

प्रस्तावना

इस शोध–पत्र में लोकगीत, लोक–साहित्य की अवधारणा को बताने का प्रयास किया गया है। गीत– साहित्यिक गीत और लोकगीतों के अन्तर एवं भावपक्ष, कलापक्ष और शिल्पगत अन्तर को रेखांकित किया है। विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से लोकगीतों को विभाजित किया है। इसके विभाजन की अनेक पद्धतियाँ देखने को मिलीं – जैसे शास्त्रीय पद्धति, भावना एवं प्रवृत्ति के आधार पर, शिल्प और रूप के आधार पर आदि। संस्कार गीत, ऋतुगीत, भक्तिगीत, भिखारी गीत, बालगीत, गृहकार्य के गीत, कृषि कार्य के गीत, कथा गीत, नृत्यगीत आदि गीतों के अनेक रूप मिलते हैं।

साहित्यिक गीत एवं लोकगीतों में अंतर

गीतों में हम भारतीयों के प्राण बसते हैं और हमारी संस्कृति भी। स्वर, लय, ताल में बद्ध जब मानव मन की सुंदर अभिव्यक्तियाँ ह्रदय से शब्दों का रूप लेकर लौटती हैं, तो जन्म होता है – गीतों का। गीतों ने कई रूप धरे हैं। लोक गीत, साहित्य गीत, भक्ति गीत, आकाशवाणी, दूरदर्शन के गीत और फिल्मी गीत आदि।

लोक गीतों और साहित्य गीतों के अंतर को जानना संस्कार गीतों के आधारीय स्वरूप को जानना है। "प्रगीत काव्य के वस्तुतः दो भेद हैं। प्रथम ग्राम्य गीत या लोक गीत, द्वितीय नागर या साहित्यिक गीत।"[1] "ग्राम्य गीत अथवा लोक गीत हमारी संस्कृति और भावना के अक्षय भंडार ही नहीं कलापरक संगीत के मूल उत्स भी है। सामाजिक लोकाचार विधि व्यवहार इत्यादि में लोक गीतों का ही प्राधान्य है।"[2] सोहर के गीत, घोड़ी, बन्ने के गीत सुहाग, सावन के गीत ये सब इन्हीं लोक गीतों के अंतर्गत आते हैं। जो अधिकांशतः स्त्री, परन्तु पुरुषों के द्वारा भी रचे और गाये जाते हैं।

"नागरिक गीत वस्तुतः साहित्यिक गीत हैं। इस प्रकार के गीतों में लोक गीतों की अपेक्षा भाषा का सौंदर्य, भावों की गहनता तथा साहित्यिक शैली का अनुसरण अधिक होता है।"[3]

"लोक गीतों, साहित्यिक गीतों, आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं सिनेमा के गीतों के बीच लोकगीतों की अवस्थिति सबसे प्राचीन है। साहित्य के सृजन के आरंभ के पूर्व से ही इन लोक गीतों का अस्तित्व ढूंढा जा सकता है। अतः इन लोक गीतों को साहित्यिक गीतों और अभिजात्य साहित्य का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। लोक गीतों और साहित्य गीतों में मूल अंतर तो यही है कि लोक गीत किसी किताबों में सुरक्षित नहीं रहते हैं जबकि साहित्य गीतों का पुस्तकों में सुरक्षित होना ही उनका प्रमाण है। लोक गीतों में लोक मानस की अभिव्यक्ति होती है, साथ ही लोक जीवन की, जिसमें समाज का वह हिस्सा जो शास्त्रीयता और पांडित्य से अछूता है, जिसे नागरिक संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया है, जिसमें अकृत्रिमता है – इसकी भी झांकी रहती है।

इसी कारण ही लोक गीतों में पुराकाल से चली आती हुई प्राक्ल्पनायें, शकुन, अपशकुन, अंधविश्वास, धार्मिक रुढ़ियाँ, सामाजिक संस्कार, त्यौहार एवं व्रत पर्व तथा जन–जीवन के खान–पान, रहन–सहन संबंधी अनेक बातें सुरक्षित रहती हैं।"[4]

"साहित्यिक गीतों में लोकमानस के स्थान पर कवि के विशिष्ट चेतन मन की अभिव्यक्ति होती है। भले ही उसके साथ उनका अवचेतन लोक मन भी लगा लिपटा रहता हो। कवि के इसी विशिष्ट चेतन मन की प्रधानता के कारण साहित्यिक गीत कवि के राग विराग आस्था विश्वास, विचारधारा तथा उसकी शिक्षा, ज्ञान आदि को सामने रखते हैं।"[5]

"साहित्यिक गीतों में रचनाकार का भावाकुल चेतन मन ही व्यक्त होता है, पर कभी–कभी अनुभूति के विस्तार व आवेग से लोकमन के छंद भी झलक उठते हैं।"[6]

"लोक गीत जिस भू–भाग से जुड़े होते हैं, उस क्षेत्र के जीवन में रची–बसी अनेक जीवन स्थितियों को भी मुखरित करते हैं।"[7] उन पर क्षेत्रीय रंग दिखाई पड़ता है। "साहित्यिक गीतों में भी कवि के क्षेत्र विशेष से संबंधित विशेषतायें रहती हैं, पर गौण रूप में।"[8] लोक गीतों में जीवन की सहजता होती है, वहीं साहित्यिक गीतों में इसका अभाव होता है।

"लोक गीत यदि कच्चा माल है, तो गीत उसका परिष्कृत–परिमार्जित स्वरूप।"[9] लोक गीतों में रागों और तालों की शास्त्रीय जकड़बंदी या अन्य कलापरक विशेषताओं के प्रतिबंध का अधिक आग्रह नहीं होता। इधर जब कोई कुशल गायक ऐसे लोक गीतों को गाने बजाने लगता है, तो इन गीतों में सहज ही हल्की–फुल्की मुरकियों, खटकें, गमक और कंठमार्दव की शालीनता समाहित होकर लोक गीतों का स्वरूप ही कुछ और कर देती हैं। ऐसे में ये ग्राम्य गीत पूरी तरह से ग्राम्य गीत ना रहकर अंशतः ग्राम गीत रह जाते हैं और गीत के आधारीय तत्व के रूप में अथवा कच्चे माल के रूप में अपना योगदान देते हैं।

"लोक गीतों में लोक के अनुभव होते हैं जबकि गीतों में व्यक्तिगत अनुभूति मुखर–प्रखर और प्रमुख होती है कहने का आशय यह नहीं कि लोक गीतों में निजी अनुभूतियाँ नहीं होतीं, लोक गीतों की निजी अनुभूतियाँ भी लोकसम्मत होती हैं अर्थात् यहाँ एक का सुख–दुख पूरे लोक का सुख–दुख प्रमाणित होता है। यही कारण है कि गीत में गीतकार का नाम संश्लिष्ट होता है जबकि लोक गीतों में लोकगीतकार अनाम ही रह जाता है।"[10]

"लोक गीत मौखिक परंपरा में जीवित रहते हैं। विभिन्न युगों के लोकगीतकार या गायकवृन्द इन गीतों में अपने देशकाल के प्रभाव को संक्रमित करते हुए उन्हें अपने मानस का अंग बनाकर प्रस्तुत करते हैं। अतः इन गीतों में मूल रचनाकार का नाम तो खो जाता है, पर इस प्रक्रिया से एक व्यक्ति की नहीं संपूर्ण लोक समूह की चिंताधारा जुड़ जाती है।"[11] "दूसरी तरफ साहित्यिक गीत मौखिक न होकर लिपिबद्ध रहते हैं तथा कवियों का नाम भी उससे जुड़ा रहता है, अतः इन गीतों में उनकी वैयक्तिकता सुरक्षित रहती है।"[12] लोकगीत की अनुभूतियाँ लोक के लिये अर्पित होती हैं इसलिये ही लोक गीतकार का नाम महत्वपूर्ण नहीं हो पाता। जबकि कोई एक गीत रचयिता का होना अनिवार्य सी बात है लेकिन उसकी संरचना पर्यावरण कुछ इस तरह का होता है कि व्यक्तिगत अनुभूति समुचित लोक का स्थान ले लेती है।

"गीत को शिष्ट शास्त्र परंपरा और लोकगीत को मौखिक या लोक परंपरा में प्रतिष्ठित कहा जा सकता है। लोकगीतों में वन पुष्प की सुवास है जबकि शिष्ट गीतों में उपवन की सजावट है। दोनों में भावना के साथ रागात्मकता का समावेश है लेकिन एक के पास गला है तो दूसरे के पास कला। गीत और लोकगीत दोनों में संगीत सुगंफित है।"[13] लोकगीतों के रचियता प्रायः जीवन के अनुभवों की किताब पढ़ा करते हैं और लोकगीत के रूप में उन्हीं अनुभवों के सार हुआ करते हैं, यहाँ यह कहा जा सकता है कि वे पढ़े लिखे नहीं भी हो सकते हैं जबकि इसके विपरीत साहित्यिकद गीतों के रचनाकार शिष्ट लिखित परंपरा का निर्वाह करते हैं। लिखित परंपरा के अनुसरण और अनुभव के आधार के परिणाम स्वरूप साहित्यिक गीतों की रचना होती है। "लोकगीतकार प्रायः निरक्षर होते हैं जबकि गीतकार प्रायः लिखित परंपरा से आते हैं कबीर आदि अपवाद हैं क्योंकि मूलतः ये साधक और समाज सुधारक हैं। ये 'कागद लेखि' में विश्वास न करके 'आखिन देखि' में आस्था रखते हैं, ये बान की पोथी नहीं, जीवन की किताब पढ़ते हैं इन्हें लोक और शिष्ट परंपरा का सुंदर उदाहरण कहा जा सकता है। कबीर निरक्षर होकर भी ज्ञानमार्ग के प्रवर्तक प्रमाणित होते हैं। लोकगीतकार भी कबीर की तरह निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं, इसके पास जीवन को पढ़ने और भोगी हुई अनुभूति को व्यक्त करने का सरल–सहज अंदाज होता है।"[14]

देखा जाये तो लोकगीत और साहित्य गीत दोनों ही में जीवन डोलता–बोलता है अनुभूति का अस्वादन जीवन चरित होकर रुपायित होता हुआ सहजतः देखा जा सकता है।

"गीतों में भावों के अनुरूप अभिव्यक्ति–कौशल होता है जबकि लोकगीतों में शास्त्रीय कला की कुशलता देखना ठीक नहीं है। गीत और लोकगीत दोनों में अलंकार अनायास आयातित हैं इसके बावजूद गीत में अलंकार सायास और लोकगीत में अनायास आ जाते हैं।"[15]

"उपमानों की नवीनता, अनुप्रासों, वृत्यानुप्रासों की छटा रूपक आदि की उपस्थिति गीत के भावों को भावित करने में रसोद्रेक की स्थिति की उपस्थिति में बाधक नहीं अपितु साधक है। इसी भांति लोकगीतों में मौलिक उपमानों अलंकारों की स्वाभाविकता दृष्टव्य है।"[16]

"गीतों में उपमान और प्रतीकों के प्रयोग होते हैं, लेकिन लोकगीतों में मौलिक और आंचलिक उपमानों प्रतीकों का प्रयोग गीताकारों को भी चमत्कृत कर देता है।"[17]

इस तरह साहित्यिक गीतों में अभिव्यक्ति कौशल, अलंकारों आदि के माध्यम से गीत को सरस बनाया जाता है वहीं लोकगीत में इन तत्वों का समावेश स्वाभाविक व मूल रूप से विद्यमान होते हैं तथा अपनी इस उपस्थिति से भावों के अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न करते हैं। "लोकगीत निरलंकार ही नहीं होते छंदों के निर्वाह में भी शिथिलता देखी जाती है इसके विपरीत गीतों में छंदबद्धता जरुरी है। छंद के अनुशासन से अनाक्रांत होने पर गीत की स्वायत्तता नहीं रह जाती। गीत से छंद की मुक्ति ही नयी कविता, अ–कविता, समकालीन कविता के रूप में प्रकट होकर विचार प्रधान और गद्‌य की गति को लेकर संस्कारी पाठकों से अरुचि का उपक्रम निरुपित हुई।"[18]

लोकगीतों की सहजता अपने–अपने क्षेत्रों के इतिहास को समेटे हुए हैं ऐसे इतिहास को जो किसी साहित्य और इतिहास की पुस्तक में न हो। ऐसा इतिहास केवल लोकगीतों में ही सुरक्षित रह सकता है। जबकि साहित्यिक गीतों में ये इतिहास एक तथ्य के रूप में ही वर्णित होते हैं।

"गीतों में नये–नये उपमान और प्रतीकों के प्रयोग होते हैं लेकिन लोकगीतों में मौलिक और आंचलिक उपमानों और प्रतीकों का प्रयोग गीतकारों को भी चमत्कृत कर देता है। श्री रामनारायण उपाध्याय लिखते हैं कि जैसे इनमें बहन की तुलना आम्रवनों से की गई है और कन्या की तुलना अपने आंगन के एक कोने में खड़े केले के एक वृक्ष मंडप पर छाई नीले व गीले बांस की बांसुरी को बजाना ही होता है उसी तरह अत्यंत ही लाड़–प्यार से पली अपनी भाई की सुकुमार बहन को ससुराल जाना ही होगा। वैसे बांस वंश–वृद्धि का प्रतीक माना गया है। इसी तरह दूल्हे की तुलना अदरक के पान से की गई है जो देखने में तो सुहावने लगते हैं, लेकिन अपने लिए कन्या का दान मांगते हैं।"[19]

लोकगीतों का वैशिष्ट्य उसकी सहजता है, जबकि साहित्यिक गीतों की गंभीरता। साहित्यिक गीतों और लोकगीतों दोनों ही में संस्कृति की निष्ठा होती है। लोकगीतों में संस्कार ही जीवन रूप में पड़ते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों का जीवंत रूप लोकगीतों में समाहित होता है। "लोकगीत तो प्रत्येक संस्कार में उमड़ पड़ते हैं। ये संस्कार सुख और दुख अर्थात् जीवन के संघर्षों को गाकर और नाचकर कम करने का संयोजन है। छत्तीसगढ़ी में कहावत है, जिसके अनुसार मनुष्य खाये बिना रह सकता है लेकिन गाये बिना नहीं।"[20]

इस तरह लोकगीतों में संस्कृति की व्यापकता और जीवन की छोटी–छोटी बातों का ब्यौरा होता है। गीतों के वैविध्य को आंकते हुए यही स्पष्ट होता है कि साहित्यिक गीतों में वही गीत अधिक असरदार और मन को छूने वाले होते हैं जिनमें कहीं लोकगीत के तत्व हों चाहे अनुभूति के स्तर पर या लय के स्तर पर। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकगीत ही गीत या साहित्य का आद्य रूप है – साहित्य गीत उसी का अभिजात रूप है।

संदर्भ ग्रंथ

1 गुप्ता विमला, आधुनिक हिन्दी प्रगीत, प्र.सं. 2026, पृ. 27
2 वही, पृ. 27
3 वही, पृ. 28
4 अरोड़ा वेदप्रकाश (संपादक), आजकल, अक्टूबर 1981, नई दिल्ली, पटियाला हाउस, पृ. 39
5 वही, पृ. 39
6 वही, पृ. 39
7 वही, पृ. 40
8 वही, पृ. 40
9 पाठक विनय कुमार, शुक्ल जयश्री (संपादक), हिन्दी गीत यात्रा एवं समकालीन संदर्भ, कुलदीप जगदीश, गीत एवं लोकगीत का अंतर्संबंध, प्र.सं., 2005, पृ. 535
10 वही, पृ. 535
11 अरोड़ा वेदप्रकाश (संपादक), आजकल, अक्टूबर 1981, नई दिल्ली, पटियाला हाउस, पृ. 40
12 वही, पृ. 40
13 पाठक विनय कुमार, शुक्ल जयश्री (संपादक), हिन्दी गीत यात्रा एवं समकालीन संदर्भ, कुलदीप जगदीश, गीत एवं लोकगीत का अंतर्संबंध, प्र.सं., 2005, पृ. 537
14 वही, पृ. 537
15 वही, पृ. 539
16 वही, पृ. 540
17 वही, पृ. 540
18 वही, पृ. 541
19 वही, पृ. 544
20 वही, पृ. 541